Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 4 | ISSUE : 7 | JULY 2018

प्रो. केशवराम शर्मा रचित 'हिमाचल वैभवम्' काव्य में पर्यावरण चेतना

डॉ. बलवंत सिंह चौहान [1]

[1] सहायक आचार्य (संस्कृत), डॉ. बी.आर.ए. राजकीय, महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

ABSTRACT

कविवर केशवराम शर्मा रचित 'हिमाचल वैभवम्' नौ सर्गीय काव्य 465 पद्यों में निबद्ध है, जो मान्यता प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित है। कविवर ने काव्य में हिमाचल प्रदेश की कला, संस्कृति एवं ऐतिहासिकता का अविस्मरणीय चित्रण किया है। जहाँ युगों–युगों से तपोधन ऋषियों, देवताआ और त्रिपुरारि शंकरादि ने परमशान्ति प्राप्त करने के लिए अनवरत तप किया था। 'हिमाचल वैभवम्' काव्य के 'निसर्ग' नामक सर्ग में हिमाचल प्रदेश के गिरिशिखरों, मेघों, झरनों, तालाबों, वृक्षों आर विविध पुष्पों की सुगन्धादि का, 'मुनिसर्ग' में महर्षि मनु, व्यासमुनि, पराशर, जमदग्नि, परशुराम व लोमश प्रभृति ऋषियों के महान् चरित्र का 'देवीसर्ग' में सम्पूर्ण विश्व की स्वामिनी जगदम्बा, भीमाकाली, शीतलामाता, चामुण्डादि का, देवसर्ग में पार्वती पति भगवान् शंकर के उदात्त चरित्र का, दानवराज बलि की महिमा का, पाण्डवों के वनवास का, हाटकोटि नाम देवी स्थल का, गुरुनानक देव, गुरु गोविन्द सिंह, शम्भुनाथ, केहर सिंहादि राजाओं का, 'समाजसर्ग' में हिमाचल प्रदेश की संस्कृति, नारियों के अनुपम सौन्दर्य, उत्सवों व हिमाचल के स्वाभिमानी वीर शहीदों आदि का व अन्तिम 'उपसंहार सर्ग' में स्वार्थी लोगो द्वारा पर्यावरण के साथ किये जा रहे खिलवाड़ व पर्यावरण जागरुकता का हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया है। कविवर ने पर्यावरण चेतना मे जिस सूक्ष्म दृष्टि का उपयोग किया है, उसका रसास्वादन करते हुए मेरे द्वारा इस शोध आलेख में प्रकृति के कतिपय अनुपम मनोहर प्रसंगों का चित्रण किया गया है। वस्तुतः कविवर ने अपनी कृति में पदे–पदे पर्यावरण–स्वच्छता व जागरुकता, लोकमंगल की कामना और भारतीय संस्कृति का अनूठा चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

Keywords: रविरश्मिशुभै, ग्रीष्मार्कचण्डकिरणैः, वातप्रकम्पिततरोः मृदुरक्तरसम् शैलाधिराजः, पावनतीर्थराजः, तुषारशैल, विषदूषिता।

शोध उद्देश्य –

1. साहित्य के भावपक्ष और कलापक्ष का गूढ़ता से अध्ययन करने वाले शोधार्थियों और अध्येताओं को साहित्य सृजन के प्रति उन्मुख करना।
2. सहृदय अध्येताओं और शोधार्थियों के साहित्यश्री में वृद्धि करना और उन्हें नवसृजन हेतु प्रेरित करना।
3. पर्यावरण के प्राकृतिक उपादानों को सुरक्षित एवं संरक्षित रखने हेतु सहृदय पाठकों को जागरूक करना।
4. पाठकों और शोधार्थियों को भोगवादी संस्कृति के विरुद्ध तपोमय व त्यागमय जीवनशैली को अंगीकार करने हेतु प्रेरित करना।
5. सहृदय पाठकों को ऋषियों व मुनियों के उदात्त चरित्र से अवगत करवाकर लोकमंगल हेतु भारतीय संस्कृति की ओर लौटने का आह्वान करना।
6. काव्य में प्रयुक्त सौन्दर्य बोध से सहृदय अध्येताओं व पाठकों को अवगत करवाकर नवीन कृति के मूल्यांकन के व्याज से नवसृजन को आत्मसात् करने का सुअवसर प्रदान करना।

प्रस्तावना –

प्राचीनकाल से ही संस्कृत कवियों ने अपने–अपने प्रबन्धों को प्रकृति के विभिन्न उपादानों के चित्रण से अलंकृत किया है। जहाँ प्रकृति वर्णन कवि को अपनी विचाराभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करता है, वहीं कवि की कलात्मक समीक्षा में यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भी होता है। प्रकृति वर्णन जहाँ कथानक के प्रवाह में सहायक होता है, वहीं सहृदय के चित्त को प्रकृति के बहुरंगी शोभन चित्रण द्वारा आह्लाद से आप्यायित कर देता है। वस्तुतः काव्यादि में चारुता और रोचकता के संवर्धन के लिए प्रकृति–चित्रण एक अपरिहार्य तत्त्व है। वहीं कवि की कलात्मक समीक्षा में यह प्रकृति चित्रण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार काव्य में यथास्थान संध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, प्रातःकाल, मध्याह्न, संध्या, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन–उपवन, समुद्र, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, यात्रादि का सांगोपांग वर्णन होना चाहिए –

संध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः।।[1]
सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः।।[2]

प्रो. शर्मा ने भी काव्य के शास्त्रीय मानदण्डों का सजगता से निर्वहण करके अपने काव्य 'हिमाचल वैभवम्' को इसी प्रकार के रमणीय वर्णनों से सुसज्जित किया है। कविवर न प्रायशः प्रकृति के सुकोमल पक्ष का अपने काव्य में अभिराम प्रयोग किया है।

विषय–उपस्थापन –

कविवर शर्मा ने अपने प्राकृतिक उपादानों का अपनी सरस और कलात्मक प्रतिभा के मध्य मञ्जुल सामञ्जस्य स्थापित करते हुए काव्य में अनेकविध स्थलों पर रमणीय भाव चित्रण प्रस्तुत किये हैं। काव्य के प्रथम सर्ग 'निसर्ग' में हिमाचल पर्वत का अभिराम चित्रण करते हुए लिखते हैं कि अपनी तेजस्विता से भूमण्डल को विभूषित करने वाले भारतवर्ष की उत्तर–पश्चिम दिशा को सम्पूर्ण पर्वतों का राजा हिमाचल अत्यधिक सुशोभित करने वाला है, जो मोटी और ऊँची– ऊँची शिखर पंक्तियों से आवृत्त है। इस हिमपण्डित पर्वतराज के रमणीय ऊँचे और अगम्य शिखर बलवान् लोगों के द्वारा भी लांघे नहीं जा सकते हैं। साथ ही कवियों की कल्पना द्वारा इसकी सुन्दरता ऐसे नहीं आंकी जा सकती है जैसे देवांगनाओं की सुन्दरता मर्त्यांगनाओं के द्वारा।

रम्या यथोच्वशिखरा अगमा हिमाद्रे,
लंङ्घ्या न सन्ति बलवद्भिरपीह लोकैः।।
मातुं तथाऽस्य कठिना कविकल्पनाभि,
र्मर्त्याङ्गनाभिरिव सुन्दरताऽमरीणाम्।।[3]

यह हिमाचल पर्वत शीतल और मनोहर गन्ध वाली मधुर पवनों द्वारा देवदारु के पेड़ों के घने शाखारूपी पंखों द्वारा ऐसे संवाहित किया जाता है जैसे स्वर्ग की वाराङ्गनाओं द्वारा देवराज इन्द्र। इस हिमाचल पर्वत के चारों ओर शीतल जल से युक्त चञ्चल तरंगमालाओं से आनन्दप्रद कल्लोल करती हुई नदियाँ निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं। साथ ही धवल और चञ्चल झरनों की धाराओं से बिखरे मन का हरण करने वाले जलकणों के सींचने से फूल खिल जाते हैं, जिनके पराग की सुगन्ध को संजोने वाली मदमस्त पवनें इस देवभूमि हिमाचल प्रदेश में बिखर जाती हैं।

शीतैर्निरन्तरमसौ मधुरै र्मरुद्भि, देवद्रुसान्द्रविटपव्यजनै र्नगेशः।
संबीज्यते रुचिरसौरभसारवद्भिः, स्वलौकवारवनिताभिरवमारेशः।।[4]
चेतोहरैर्धवलचञ्चलनिर्झराणां, कीर्णैः कणै र्वनभुवं परिषिञ्चयद्भिः।
उन्मीलितोत्पलपरागसुगन्धिगर्भाः, स्वैराः सरन्ति पवनो इह देवभूमौ।।[5]

कविवर आगे लिखते हैं कि हिमाचल प्रदेश में चञ्चल कण्ठ वाले पक्षियों के स्वरों से हवाओं द्वारा कंपाए हुए पत्तों के टकराने से उत्पन्न ताल से मुग्ध हुए वृक्षसमूह ऐसे लगते हैं मानो वे नाच ही रहे हों तथा फलों के रूप में पसीने की बूंदें गिरा रहे हों। इस प्रदेश की भूमि कहीं पर पीले सरसों से भरपूर खेतों वाली, कहीं धवल जलनिर्झरों वाली तथा कहीं पर श्यामल देवदारु के वृक्षों वाली अनेक रंगों से युक्त होने पर अत्यन्त रमणीय लगती है। यहाँ के पर्वतशिखर जो शिशिर ऋतु में हिमपात से सफेद होते हैं जो वर्षाकालीन बादलों से घिरकर अंधेरे हो जाते हैं तथा वे ही पर्वतशिखर बसन्त के सुहाने समय में विचित्र वर्ण वाले हो जाते हैं। इस प्रकार तीन विशेष वर्णों में बदलते रहने के कारण प्रकृति के तीन गुणों की व्याख्या करते हैं –

कैदारकै र्बहुलसर्षपपंक्तियुक्तैः, पीतां क्वचिद् धवलिता जलनिर्झरैश्च।

श्यामा क्वचिद् वसुमतीह च देवदारु, द्यानै र्विभाति बहुवर्णविशेषरम्याः।।[6]

शैलास्तु येऽत्र शिशिरे हिमपातशुक्लाः, प्रावृट्पयोदपिहिताश्च तमिस्रवर्णाः।

चित्राः पुनश्च कुसुमाकरचारुकाले, व्याचक्षते त्रयमिव प्रकृतेर्गुणानाम्।।[7]

ग्रीष्मऋतु में सूर्यदेव की प्रखर किरणों स जब विविध देशों व प्रदेशों के अंग सन्तप्त हो जाते हैं और अन्यत्र कहीं भी ताप से शान्ति नहीं प्राप्त कर पाते हैं तो वे सन्तप्त पर्यटक शीतल जल और पवन की उपलब्धि के तापनाशक ईश्वर की तरह इस हिमाचल प्रदेश का ही आश्रय ग्रहण करते हैं। ऐसे समय में सर्वत्र खिले हए फूलों की सुगन्ध से मनमोहक वृक्षों को छूकर आई मादक सुगन्ध से भरपूर मद से गीली हवाएँ, हिमाचल के चारों ओर फैलकर दिशाओं के अंगों का आलिंगन करती हैं –

ग्रीष्मार्कचण्डकिरणैः परितप्तगात्रा, नान्यत्र दुस्तपनशान्तिमवाप्नुवन्तः।

लोकाः सुशीतलपयः पवनोपलब्ध्यै, तापच्छिदं हरिमिवेनमुपाश्रयन्ते।।[8]

फुल्लप्रसूनभरचारुतरून् समन्तात्, स्पृष्ट्वा निकाममभिरामसुगन्धवाताः।

व्याप्ता हिमाचलगिरौ मदमेदुरांगा, आलिंगयन्ति हरितां परितो वपूंषि।।[9]

वस्तुतः कविवर शर्मा ने काव्य में प्रकृति का मनोहारी चित्रण किया है। उनके द्वारा किये गये चित्रण को पढकर ऐसा लगता है मानो प्रकृति के ये सुरम्य दृश्य हमारी आँखों से ही देख रहे हों। प्रो. शर्मा हिमाचल प्रदेश के पर्वतशिखरों से बहने वाले झरनों का पुनः रमणीय वर्णन करते हुए लिखते हैं कि झरनों से गिरते हुए जलकणों को जब सूर्य की किरणें स्पर्श करती हैं तो वे चमककर हिमाद्रि की गुफाओं के गहन अन्धकार को दूर कर देते हैं। ऐसे कमनीय परिदृश्य में लहराते हुए चीड़ के वृक्ष अपने सुगन्धित पत्रगुच्छों से लदकर पर्वतराज को पंखा–सा करते हैं तो लगता है कि मानो यौवन के भार से झुकी हुई मदमस्त वारवनिताएँ हाथ में चंवर लेकर राजमञ्च पर स्थित भूपति की सेवा कर रही हों –

शैलोद्गता जलकणै रविरश्मिशुभ्रै, रान्ध्यं हरद्भिरमराचलगह्वराणाम्।

भान्ति प्रपातनिकराः प्रचुरां हिमाद्रे, रार्षीमिव त्विषमहर्निशमुद्गिरन्त।।[10]

कविवर प्रकृति का मनोहारी चित्रण करते हुए लिखते हैं कि हिमाचल प्रदश में बहने वाली हवाओं के द्वारा कम्पकम्पाए गए वृक्षों की हृदय को मोहित करने वाली सुगन्ध से युक्त नीचे गिरे हुए फूलों, पत्तों और फलों द्वारा हिमाचल प्रदेश में आने वाले पर्यटकों के लिए सदा ही उत्तम उपहार प्रदान किये जाते हैं। अपनी प्रेमिकाओं के अधर पान से मदमस्त हुए भँवरे अपनी इच्छा के अनुसार लताओं और तरुओं की शाखाओं पर विचरण करते हुए कानों को मुग्ध कर देने वाली गुञ्जार के द्वारा मानो वे शैलराज हिमाचल के उदार यश का निरन्तर गुणगान करते रहते हैं। साथ ही इन वृक्षों और पत्रों के छातों से वर्षा व धूप से रक्षा करके सुगन्धित वायु द्वारा ताप की शान्ति करके अपने फलों से खाद्य सामग्री को जुटाकर अपने यहाँ आश्रित लोगों की सहर्ष सेवा किया करते हैं –

वातप्रकम्पिततरोः पतितैः प्रसूनैः, पत्रैः फलैश्च हृदयंगमगन्धवद्भिः।

आगुन्तकाय हि जनाय हिमाचलाद्रौ, सम्पाद्यते सततमुत्तममातिथेयम्।।[11]

वर्षातपप्रसरवारणमत्र पत्र, च्छत्रैः सुगन्धिपवनैस्थ तापशान्तिम्।

सम्पाद्य खाद्यमुचितं स्वफलैश्च वृक्षाः, सेवां मुद्रा विदधते स्वतलाश्रितानाम्।।[12]

हिमाचल प्रदेश की स्वाभाविक मनोहारिता में कविवर लिखते हैं कि यहाँ बर्फ की तरह शीतल पवनें ग्रीष्म ऋतु में भी शीतलता का आनन्द प्रदान करने वाली हैं तथा प्रातःकाल की पहली–पहली सूर्य की रश्मियाँ यहीं पर सबसे पहले बर्फ का स्पर्श करती हैं और इसी पर्वतराज के वृक्षों की शाखाओं पर पक्षीगण चहचहाते हैं और आगन्तुकों को सूर्योदय होने का समाचार पहुँचाते हैं। वहीं रात्रि में यहाँ नदी अपनी जलतरंगों की मधुर ध्वनियों द्वारा लोगों को लोरी देकर सुलाती हुई उस माता की तरह लगती है जो आलस से शिथिल हुए तथा शयन के इच्छुक शिशुओं को सहलाकर निद्रा के लिए लोरी सुनाया करती है –

प्राभातिकस्य हि सहस्रकरस्य पूर्व, मत्रैव रम्यकिरणास्तुहिनं स्पृशन्ति।

अस्यैव पर्वतवरस्य च पादपानाम्, अग्रे शिखासु वयसां प्रथते विरावः।।[13]

कल्लोलिनी जलतरंगरवैर्मनोज्ञै, र्यामागमेऽखिलजनानिह शाययन्ती।

मन्दं स्पृशन्त्यलसशान्तशिशून् सुषुप्सून्, निद्रासुगीतिरतैव विभाति माता।।[14]

हिमाचल के तरुशिखरों में पुष्पित हुए वरास के लाल–लाल फूल ऐसे लगते हैं मानो पृथ्वी के हृदय का अनुराग हो। बसन्त ऋतु में खिले हुए इन पुष्पों को देखकर भ्रमण करने वाले पथिकों और पर्यटकों के हृदय प्रिया के विरह से व्याकुल हो जाते हैं। इस प्रदेश के विशाल सघन तरुओं में मदमस्त बन्दरों के समूह कोलाहल करते हुए जब क्रीड़ा करते हैं तो लगता है कि युग के व्यतीत होने पर भी उपकार का स्मरण करने वाले सीतापति श्रीरामचन्द्र की, पिछले युग में की हुई सेवा का मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर रहे हों –

रक्तैर्वरासकुसुमैः शिखरे तरूणां, मूर्तिं गतैरिव धराहृदयानुरागैः।

वासन्तिकेऽत्र समये भ्रमतां जनानां, चेतांसि दारविरहाद् व्यथितीक्रियन्ते।।[15]

मत्तप्लवंगमकुलानि सुखं हिमाद्रौ, क्रीडापराणि मुखराणि महाद्रुमेषु।

सीतापतेरिव युगापगमऽप्यभीष्टं, सेवाफलं कृतविदः समवाप्नुवन्ति।।[16]

कविवर इस प्रदेश में समयानुसार वृक्षों पर लगने वाले फलों में से दाड़िम के फलों के रसास्वादन पर लेखनी चलाते हुए लिखते हैं कि इस प्रदेश में बादलों की तरह विशाल और झुके हुए वृक्षों पर दाड़िम के फल तोते की चोंच के स्पर्श से कटकर जब मीठा सुस्वादिष्ट रस बरसाते हैं तो ऐसे लगता है मानो असामयिक वर्षा हो रही हो। साथ ही हवा के द्वारा हिलाए गए पेड़ों के पत्तों का झूमझूम कर हिलना स्वर्ग की नृत्यांगनाओं के नृत्य को भी फीका कर देता है तथा पक्षियों की चोचों के पुटों से निकले गीत गन्धर्वों के गायन को हर लेते हैं। वहीं अमृत के प्यालों के समान पत्रपुटकों द्वारा खिले हुए फूलों के परागकणों का पानकर मदमस्त हुए पक्षीगण स्वर्ग की सुन्दरियों के सैंकड़ों गीत स्वरों को भी मात देते हैं –

पक्वानि दाडिमफलानि शुकास्यचञ्चु, स्पर्शक्षतानि मृदुरक्तरसं स्रवन्ति।

मेघायमाननतपादपलम्बितानि, कुर्वन्त्यसामयिकवृष्टिमिवाचलेऽस्मिन्।।[17]

मत्ताः सुधाचषकपत्रपुटैः प्रकामम्, उन्निद्रपुष्पमकरन्दकणान् निपीय।

गीतैः खगास्तुहिनशैलदिगन्तराले, स्वः सुन्दरीस्वरशतानि विडम्बयन्ति।।[18]

प्रो. शर्मा लिखते हैं कि ऋषियों द्वारा आश्रित इस पुण्य प्रदेश में लम्बे–लम्बे झरनों के गिरने से उत्पन्न गम्भीर घोष जंगलों के हिंसक जन्तुओं को यहाँ से डराकर भगा देता है। मानो यहाँ से दया के पात्र जीवों की हिंसा का उन्मूलन कर रहे हों। साथ ही सूर्य के आतप से पिघले हुए हिमाचल के शिलाखण्डों से निचोड़े हुए अनेक धातुओं के मधुर साररस बहती हुई नदियों के जल में मिलकर सांसारिक मनुष्यों के स्वास्थ्य की उन्नति में निरंतर तत्पर रहते हैं –

निःष्यन्दिता विविधधातुरसां समन्ताद्,

भानुप्रतप्तवपुषोऽस्य शिलोच्चयस्य।

स्रोतस्विनीसलिलसम्मिलिता जनानां,

स्वास्थ्योन्नतिं विदधते मधुरा न केषाम्।।[19]

कविवर वसन्त ऋतु की शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हिमाचल पर्वत पर भीनी मधुर सुगन्ध युक्त पवनें चलती हैं तो उद्यान के तरुओं के शिखरों पर खिले हुए सफेद फूलों के गुच्छे शीतऋतु की समाप्ति के सूचक शिशिर ऋतु के मस्तक पर वृद्धावस्था के श्वेद बालों की तरह लगते हैं।

शैले वसन्तसमये मृदुगन्धिवायौ,

उद्यानपादपशिखासितसूनसंघाः।

शीतव्यपायपिशुनाः शिशिरर्तुमुर्ध्नि,

वार्धक्यशुक्लपलितैः सदृशाः विभान्तिः।।[20]

वसन्त ऋतु में लाल रंग के दाड़िम फलों से निचुड़े मीठे रस से मिले हुए स्रोतों से निकले अमृततुल्य जल का पान कर पर्वतभूमि में गो चारण करने वाले अपनी दिनभर की थकावट को दूर करते हैं। साथ ही वृक्षों के नीचे शयन करने वालों की नींद से खुले मुखों पर जब तातों की चोंच से कटे अञ्जीर फल का रस टपकता है तो वे अकस्मात् ही जाग उठते हैं और यह समस्त वृत्तान्त उनके चित्त को आश्चर्यचकित कर देता है। नीले पर्वत के मध्य विचरण करने वाले सफेद भेड़ों के समूह को देखकर चातकगण उन्हें बादलों का समूह समझकर जल पीने की इच्छायुक्त आकाश को छोड़कर पृथ्वीतल पर उतर आते हैं –

रक्तैर्द्रुतैर्मृदुरसैरिह दाडिमीनां, स्रोतः सृतं विमलमम्बु विमिश्रमदौ।

आपीय गोपतनया अमृतायमानं, गोचारणश्रमणजं शमयन्ति खेदम्।।[21]

अञ्जीरनीरमिह कीरमुखक्षतेन, निष्यन्दितं विटपमूलसमागतानाम्।

निद्रानिरावृत्तमुखे स्वपतां जनानां, चेतः करोति चकितं पतितं नितान्तम्।।[22]

हिमाचल प्रदेश में नदियों पर बर्फ के सफेद पुल बन जाते हैं जो पर्यटकों के मन को हटात् आकर्षित कर लेते हैं और दिन में घने बादलों का आवरण चारों तरफ फैला रहता है परन्तु रात्रि में वनों की औषधियाँ चमकती हैं तो उनके प्रकाश में प्रेमी जनों का अभिसार करना सरल हो जाता है। इन घने वनों में वर्षाकालीन मेघों की ध्वनि के पश्चात् उत्कण्ठित मयूरियाँ मनोहर कोमल स्वरों में गाती हैं तो ऐसा लगता है मानो हिमाचलसुता पार्वती की सखियाँ दक्षिण दिशा को गए जलधारापिय शिव का

स्नान के लिए आह्वान कर रही हों –

कामं दिवा निबिडमेघवितानजाते, गन्तुं तमस्यसुकरं प्रतिभातु शैले।
रात्रौ तु दीपविपिनौषधजालशुभ्रे, मार्गे सदाऽभिसरणं सरलं प्रियाणाम्।।[23]
मन्ये वने हृदयहारिवा मयूर्यः, प्रावड्घनध्वनिमनुस्वनयन्त्य उत्काः।
याम्यां गतं बहुबलप्रियपार्वतीशं, सख्यो हिमाद्रिदुहितुर्नु निमन्त्रयन्ति।।[24]

हिमाचल प्रदेश के पहाड़ों पर सर्वत्र बिखरी हुई बर्फ की चद्दर देखकर ऐसा लगता है कि ऐसे कठिन पहाड़ी मार्गों पर चलते हुए पथिकों को बार–बार गिरते देखकर मानो इन्द्रदेव पर्वतों पर कोमल रुई के समान बर्फ का बिस्तर ही फैला रहा हो, ताकि पथिकों को कहीं चोट न लग जाए और हिमक्रीड़ा करते हुए उत्साही युवावर्ग पर्यटक अपने पैरों के नीचे लकड़ी को बांधकर भारी हिम पर तीव्रगति से फिसलकर चलते हुए रसासागर में डूब जाते हैं –

उच्चावचेषु कठिनेषु विसंष्ठुलेषु, मार्गेष्ववेक्ष्य पतनं व्रजतां जनानाम्।
नूनं दयाद्रुतमना मृदुतूलतुल्यं, शैले तनोति तुहिनास्तरणं मरुत्वान्।।[25]
काष्ठे स्वपादतलयोः प्रतिबध्य सोत्का, यूनां घनेषु तुहिनेषु गिरौ समूहाः।
तीव्रंगमास्तरललास्यरसाब्धिमग्ना, वैमानिकान् दिविषदो हि विडम्बयन्ति।।[26]

वहीं वर्षाऋतु के समय मेघा के आपस में टकराने से चमकती विद्युत् रात्रि में घोर अन्धकार से ढके जटिल मार्गों पर चलने के इच्छुक पर्यटकों को बार–बार रास्ता दिखाकर उनके चलने की बाधा को दूर कर देती है। अन्धेरी रात्रियों में हिमाचल प्रदेश के नगर विद्युत् के असंख्य दीपों के मण्डल से सज जाते ह तो ऐसा लगता है कि वे दिशारूपी अंगनाओं के हाथों में आरती की थालियाँ हों और वे झुककर शैलराज का नीराजन कर रही हों –

वर्षासु तीव्रतडितो घनघर्षणोत्था, घोरान्धकारपिहितासु विपद्यमानान्।
अद्रेर्जनान् जिगमिषून् विकटाटवीषु, विद्योतिता निशि मुहुः प्रदिशन्ति मार्गम्।।[27]
विद्युत्प्रदीपनिकरोज्ज्वलमण्डलानि, शैलाधिराजनगराणि तमस्विनीषु।
हस्तस्थितान्यवनितांगदिगंगनानां, नीराजनोपचितपात्रनिभानि भान्ति।।[28]

प्रो. केशवराम हिमाचल प्रदेश की पर्वतीय गुफाओं का यथार्थ चित्रण करते हुए लिखते हैं कि ये गहरी गुफाएँ पथिकों के लिए घरों की तरह आश्रय प्रदान करती हैं क्योंकि ये गुफाएँ वर्षाकालीन बादलों के द्वारा की गई जलधाराओं और शिशिर ऋतु में उग्र बर्फ तथा ओला आदि से उनकी रक्षा करती हैं। वहीं इन्द्रानुज विष्णु अपनी प्रिया पत्नी पर्वतभूमि के श्यामल शरीर को, मस्ती भरी शरद्ऋतु में और अधिक सुसज्जित करने के लिए सुन्दर हिम की उजली सफेद चादर को बादलों के द्वारा पहना देता है –

न प्रावषेण्यजलदोज्झितवारिधारा, नैवाचले च शिशिरोग्रतुषारवर्षाः।
वात्या न च व्यथयितुं पधिकान क्षमन्ते, सत्सु स्थितेषु गिरिगूढ़गुहागृहेषु।।[29]
श्यामं शरीरमथवा गिरिभूमिवध्वा, इन्द्रानुजः शरदि मण्डयितुं प्रियायाः।
शुभ्रोत्तरीयमिव चारुतुषारमाराद्, धाराधरेण परिधपायति प्रगल्भः।।[30]

वस्तुतः प्रो. शर्मा बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। इन्होंने अपनी कवि प्रतिभा द्वारा प्रकृति के बहुरंगी वर्णनों का कमनीय चित्रण किया है। शरद् ऋतु का मनोहारी वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि हड्डियों को कंपा देने वाली ठण्डी हवाओं से ठिठुरते अंगों वाले पर्वतीय लोगों को सुख प्रदान करने के लिए स्वभाव से अपने पुत्रों के कष्टों का निवारण करने वाली हिमाचल की करुणामयी भूमि अपने निम्न पर्वतों की कोख द्वारा अग्नि के समान उबलते हुए सैंकड़ों उष्णजल के चश्मों को बहाती है तथा बहने वाली सुगन्धित हवाएँ आकाश को छूने वाले बादलों के द्वारा पर्वतराज के चारों ओर चञ्चल चामर को डुलाने का कार्य करती हैं, जिसके कारण वहाँ के निवासीगण द्वारा चमरी गायों की पूंछें नहीं काटी जाती हैं –

अस्थिप्रकम्पिशिशिरानिलपीडितांगान्,
स्वोत्संगजान् सुखयितुं हिमभूः स्वपादात्।
निः सारयत्यनलतुल्यसमुष्णनीर,
स्रोतः शतानि तनयार्तिहरस्वभावाः।।[31]
अभ्रंलिहै र्जलधरैरिह गन्धवाहा,
निर्वाहयन्ति चलचामरकार्यमारात्।
स्वैरं चरन्ति विभयास्तदलूनपुच्छाः,
शैलेश्वरे सकलजन्तुहिते चमर्यः।।[32]

पर्वतराज हिमाचल के वैभव की पराकाष्ठा का स्वाभाविक चित्रण करने में निपुण प्रो. शर्मा रमणीय बर्फ की चोटियां का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि पर्वत की चोटियों में बिखरी हुई अनेक रंगों से मिश्रित सूर्य की किरणों से चमकती हुई विचित्र शोभा को धारण करने वाली बर्फ हिमनगराज के द्वारा पहने हुए उज्ज्वल मुकुट की शोभा को धारण करती है –

विभ्राजित रविकरै र्बहुवर्णमिश्रै, श्चित्रच्छटं गिरिशिरस्तुहिनं विकीर्णैः।
धत्ते द्युतिं धृतसमुज्ज्वलशेखरस्य, रत्नैरलं वसुमतीपृथुगर्भगूढैः।।[33]

पर्वतों का राजा हिमाचल अपनी विशाल गोद में रहने वाले और दर्शनार्थ आने वाले पर्यटकों को अपने नयनाभिराम वृक्षों के दृश्यों से सबको मोहित करने वाला है। हिमाचल का शिशिर पवन यहाँ के शीतल झरनों की धाराओं के जल बिन्दुओं से मिश्रित होता है। यह शिशिर पवन बर्फ का स्पर्श करते हुए सर्वत्र आगे बढ़ता रहता है और विशेष रूप से फूलों की मनमोहक सुगन्धि को साथ लेकर चलता है जिसके चलते यहाँ प्रकृति का विहंगम दृश्य देखते ही बनता है। इसी हिमाचल प्रदेश में जमदग्नि पुत्र परशुराम भगवान् का 'गिरिगंगा' नामक पवित्र नदी के तट पर लोकप्रसिद्ध आश्रम है जो पुनीत तीर्थराज के रूप में हिमाचल की भूमि पर श्रद्धावान् लोगों के आदर का केन्द्र है –

प्रपातधाराजलबिन्दुपृक्तो, हिमस्पृगम्भाजसुगन्धवाही।
हालाहलोत्पादितखेदशान्त्यै, वातीव शम्भोः शिशिरः समीरः।।[34]
यदाश्रमः शान्तवनान्तराले, नद्या समृद्धो गिरिगंगयाऽत्र।
हिमाचले पावनतीर्थराजः, श्रद्धावतामादरकेन्द्रमस्ति।।[35]

कविवर शर्मा हिमाचल की उदात्तता का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि जिसकी अञ्जलि के जल में, मछली बनकर छिपे विश्व के नाथ भगवान् ने शरण ली, उस राजा मनु ने मत्स्य रूप भगवान् के सींग में अपनी नौका, इसी पर्वतराज में बाँधी थी, जिस नौका में पूर्वतन युग के बीजों की रक्षा हुई। हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध शैलतल मनाली में हिमाच्छन्न पर्वतश्रृंगों के सफेद रंग, पर्वतखण्डों के भूरे रंग, ऊँचे वनों के श्यामवर्ण तथा निचली भूमि के हल्के लाल वर्ण इन चार वर्णों के अद्भुत समन्वय से ही प्रेरणा लेकर पृथ्वी पर चार वर्णों की सम्भवतः कल्पना की होगी।

यदञ्जले वरिणि जिह्ममीनो, जगच्छरण्यः शरणं प्रपेदे।
बीजानि गोप्तुं भगवद्विषाणे, राजाऽद्विराजे स तरीं बबन्ध।।[36]
तुषारशैलोच्चवनावलीनां, विभिन्नवर्णप्रियसन्निवेशम्।
मनुर्मनाल्यामिव वीक्ष्य भूमौ, चक्रे चतुर्वर्णमयीं व्यवस्थाम्।।[37]

कविवर शर्मा जी लिखते हैं कि देवों द्वारा की गई आराधना की सफलता से प्रेरणा पाकर ही दसवें गुरु गोविन्दसिंह ने इसी हिमाचल के 'हेमकुण्ड' पर्वत पर नयना जगदम्बा की उपासना की थी और नयना देवी मन्दिर के प्रांगण में सवा लाख मंत्र संख्या द्वारा हवन–यज्ञ किया तथा भगवती से यवनों का संहार करने वाला तीक्ष्ण खड्ग भी प्राप्त किया था तथा जगदीश्वरी देवी ने तीक्ष्ण त्रिशूल द्वारा विध्वस्त महिषासुर के नयन उखाड़कर हिमाचल के पर्वत शिखर पर स्थापित किये, जिसका नाम 'नयना देवी' मन्दिर पड़ा। जिस पर्वतश्रृंग को अलंकृत कर भगवती नयनादेवी विराजती है, वह चारों ओर चार द्वारों वाला है। जहां विभिन्न मार्गों से होते हुए दर्शनार्थी और पर्यटक आते रहते हैं –

तीक्ष्णत्रिशूलनिहतमहिषासुरचक्षुषी।
समृद्धत्याऽथवा देव्या स्थापिते शिखरे गिरेः।।[38]
लभ्यास्ति बहुभिर्मार्गैः संकेतयितुमित्यसौ।
चतुर्द्वारगिरेः श्रृंगं भूषयन्तीव राजते।।[39]
सुराराधनसाफल्यप्रेरितो दशमो गुरुः।
हेमकुण्डाचले नूनं नयनोपासना व्यधात्।।[40]

वस्तुतः हिमाचल प्रदेश का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना मानव अस्तित्व का अपना इतिहास है। इस प्रदेश को व्यास, पराशर, वशिष्ठ, मार्कण्डेय, लोमश, जमदग्नि, परशुराम, गोरखनाथ प्रभृति अनेक ऋषियों–मुनियों व सन्त–महात्माओं के निवास स्थल होने का गौरव प्राप्त है। यहाँ गर्म और ठण्डे पानी के स्रोत, ऐतिहासिक दुर्ग, प्राकृतिक व मानव निर्मित झीलें आदि पर्यटकों के लिए असीम सुख व आनन्द के स्रोत हैं। इसी हिमाचल प्रदेश में स्थित एक भव्य पर्वतमाला धौलाधार है, जिसका मनोरम और विहंगम दृश्य देखते ही बनता है। यह पर्वतमाला हिमाचल प्रदेश के पश्चिम में चम्बा जिले से प्रारम्भ होकर पूर्वी असम तक फैली हुई है। देवदारु के पेड़ों से घिरे हुए इस ऐतिहासिक धौलाधार को देखकर तो ऐसे लगता है कि यहाँ आकर जीवन ही धन्य हो गया है। यहीं बाबा बड़भाग सिंह का ऐतिहासिक गुरुद्वारा है, जहाँ लाखों श्रद्धालु आकर अपने शारीरिक रोगों से मुक्ति हेतु धौलाधार के ठण्डे जल में स्नान करते हैं –

आसीदक्षयकीर्तिरप्रतिहतप्रज्ञो गुणज्ञो नृप,
स्तस्मिन् राजशताभिवन्दितपदः संसारचन्द्राभिधः।
यस्मै नूनमदुर्नगस्य धवला धारा परां प्रांशुतां,
विस्तीर्णा वसुधा ह्युदारचरितं शक्तिं च ब्रजेश्वरी।।[41]

इस प्रकार हिमाच्छादित गगनचुम्बी धौलाधार पर्वतश्रृंखला का अनुपम दृश्य लाखों पर्यटकों व श्रद्धालुओं के मन को मोहित करने वाला है। वहीं हिमाचल के शिखरों में निरन्तर विहार करने वाले तथा वर्षा करने वाले बादल, घनी जलधाराओं के द्वारा वनों की पंक्तियों को नहलाते रहते हैं तथा परोपकार की शिक्षा यहाँ के अमृतरस प्रदान करने वाले वृक्षों के फलों और मधुर शीतलता बिखेरने वाली हवाओं के झौंकों से मिलती है। साथ ही हिमाचल के घरों के आँगन में, पर्वतों के शिखरों में, वृक्षों में तथा ऊँचे भवनों की चोटियों में चहचहाते हुए चञ्चल पक्षीगण ही शैलतल में रहने वाले लोगों को मधुर मनोहर वाणी की शिक्षा प्रदान करते हैं –

पयोधरा यच्छिखरे विहारिणो, ऽविरामधाराभिरपां समन्ततः।
वनावलिं संस्नपयन्ति तज्जना, न सन्तु वा स्नेहसुधासृजः कथम्।।[42]
महीरुहाणाममृतम्रवैः फलैः, समीरणानां प्रसरैश्च शीतलैः।
यदंकलोका इव साधु शिक्षिताः, परोपकारं विदधत्यहर्निशम्।।[43]

इस प्रकार कविवर ने काव्य में पदे–पदे प्रकृति के अनमोल रूपों का चित्रण किया है। कविवर ने काव्य में हिमाचल की नदियों, पर्वतों, फसलों, झरनों तरुओं आदि के प्रति अपने श्रद्धाभाव को प्रकट किया है। वस्तुतः भारत में प्राचीनकाल से ही सूर्य, पृथ्वी, जल वायु, वनस्पतियों, सरिताओं आदि को पूजनीय मानने की परम्परा रही है, जिसके मूल में पर्यावरण संरक्षण का भाव ही निहित है। भारतीय समाज आदिकाल से ही पर्यावरण संरक्षक की भूमिका निभाता रहा है। यही कारण है कि हमारे वेद, उपनिषद् व पुराणादि प्रकृति व पर्यावरण की महिमा से भरे पड़े हैं, परन्तु आज विश्व पर्यावरण असन्तुलन से उपजी अनेकानेक समस्याओं से जूझ रहा है। आज मनुष्य स्वार्थवश प्रकृति का दोहन कर रहा है और ऐसा करते हुए उसका आचरण प्रकृति विराधी हो चुका है। जिस धरा को हम धरती माता कहकर सम्बोधित करते हैं, उसी धरा की छाती को हम स्वार्थ में अंधे होकर छलनी करने से बाज नहीं आ रहे हैं। पर्यावरण में निरंतर बढ़ रहे प्रदूषण, जल स्रोतों की कमी, प्राकृतिक संसाधनों तथा जैव विविधता में निरंतर हो रही कमी ने हमें पर्यावरण के प्रति चिंतन करने को मजबूर कर दिया है। प्रकृति और पर्यावरण से प्रेम और उनके प्रति मानवीय दायित्वों के निर्वहण करने का आज समय आ गया है। कविवर शर्मा ने भी काव्य में पर्यावरण चेतना का सन्देश दिया है –

सुखसाधनसंग्रहार्थिभि र्न निपीड्येत निसर्गविग्रहः।
न च भोगपरै र्दुराग्रहादपकृष्येत गिरेः पवित्रता।।[44]
वसुधा विषदूषिता यदि क्वसुधाधान्यसमुद्भवस्ततः।
हिमभूः खलु रोगनाशिनी विविधव्याधिविधायिनी भवेत्।।[45]
विषमिश्रितापञ्चभूतजं बहुभी रुग्भिरुपद्रुतं वपुः।
प्रगतेरखिलं विखण्डयेन्मधुरं स्वप्नमदीर्घदर्शिनाम्।।[46]

अर्थात् कविवर का कथन है कि सुखों के साधनों के असीमित संग्रह के इच्छुकों द्वारा प्रकृति का सन्तुलित वातावरण बिगाड़ा नहीं जावे तथा भोगपरायण लोगों द्वारा दुराग्रहपूर्वक इनकी पवित्रता का अपकर्ष नहीं होना चाहिए। विषैले उर्वरकों द्वारा इस वसुधा माता को प्रदूषित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वसुधा माता की शुद्धता अनेकविध रोगों का नाश करने वाली है। यदि हमारे शरीर को पुष्ट करने वाले जल, वायु आदि पाँच भूतों के विष से मिश्रित हो जाएगा तो उनके अन्न, जलादि से पलने वाला शरीर अनेक रोगों के उपद्रव से ग्रस्त हो जाएगा, जिससे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के प्रगति के मधुर स्वप्न अदूरदर्शिता के कारण सब विखण्डित हो जाएंगे। यदि पर्वतों के तरुओं का विनाश किया जाएगा तो उसका जीवन ही अस्त हो जाएगा क्योंकि ये घने वन ही पृथ्वी के पुत्र समान होते हैं। स्वाथी लोगों के द्वारा वनों का कटाव किये जाने से होने वाला प्रदूषण सम्पूर्ण प्रकृति के सन्तुलन को अस्त–व्यस्त कर रहा है। वनों के कटाव से वातावरण में उपद्रवों की श्रृंखला उत्पन्न हो रही है जो समूचे जड़चेतन पदार्थों में अनेक विपत्तियों की कारण बन रही है। जो वृक्ष पर्वतों के हार के समान हैं, जिनसे उनकी शोभा है। उन वृक्षों को काटना कदापि उचित नहीं है। वस्तुतः जो भूषण अंग में लगाने से अद्भुत शोभा देता है यदि उसे क्षति पहुँचाई जाए तो वही लज्जा और खेद का कारण भी बन जाता है। देवयोग्य पवित्र धान्यों को कमाने मात्र के लोभी कृषकों ने इसे उपेक्षित कर रखा है वे अमृत–तुल्य पोषक हैं। उन्हें इस प्रकार की जा रही प्रमादवश लापरवाही से बचना चाहिए तथा उन्हें लुप्त नहीं होने देना चाहिए तथा जिस भारतभूमि में शरीर के रोगों की नाशक औषधियाँ विद्यमान हैं, उन लाभकारी औषधियों की खोज सक्रियतापूर्ण की जानी चाहिए –

यदि भूधरभूरुहक्षयो गतमस्तं तदमुष्यजीवनम्।
वनमेव धनं धरात्मजो रहिता हन्त! हतैव तेन सा।।[47]
गिरिहारनिभा महीरुहा नहि विच्छेदविदारणोचिताः।
कुरुतेऽंगनिवेशितं श्रियं हिनय मार्तिं च विभूषणं क्षतम्।।[48]
त्रिदशोचितशालयस्तु ये कृषकैरर्थपरैरपाकृताः।
अमृतप्रतिमाः प्रपोषकाः समुपेक्ष्या नहि ते प्रमादतः।।[49]

इस प्रकार कविवर काव्य के माध्यम से हमें यह सन्देश देना चाहते हैं कि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारे अस्तित्व की रक्षा और हमारी खुशहाली के लिए पर्यावरण का संतुलन अत्यावश्यक है। हमें अपनी किसी भी गतिविधि में प्रकृति की अनदेखी नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह हमारे लिए आत्मघाती सिद्ध होगी। हमें आज पेड़ों को अपने पुत्रवत् प्यार व देखभाल करके हमें देश में वृक्षारोपण क्रान्ति लानी होगी ताकि पर्यावरण को दूषित होने से बचाया जा सके।

निष्कर्ष –

निष्कर्ष रूप में मैं कहना चाहूँगा कि प्रो. केशवराम शर्मा सहृदय कवि होने के साथ–साथ प्राकृतिक सौन्दर्य के भी कवि हैं। कविवर द्वारा काव्य में प्रयुक्त प्रकृति–चित्रण कथावस्तु के प्रवाह में कहीं भी बाधक नहीं बना है। वस्तुतः कवि शर्मा कोमल और सहृदय भावों की अभिव्यक्ति में सिद्धहस्त हैं। उन्होंने काव्य में षड्ऋतु वर्णन में प्रकृति के सुरम्य रूपों का स्वाभाविक व कमनीय चित्रण किया है।

काव्य में अनेकविध स्थलों पर किये गय नैसर्गिक सुषमा के दर्शन हृदय को छू जाने वाले हैं तथा काव्य में प्रस्तुत चित्रणों द्वारा प्रकृति अपने स्वाभाविक विलास को लेकर प्रतिस्पन्दित हो उठी है। कविवर ने काव्य में प्रकृति के अनमोल उपहार 'वृक्षों' की मानव जीवन में महत्ता प्रतिपादित करते हुए उनके औषधीय गुणों पर भी प्रकाश डाला है। वनों की अवैध कटाई पर रोक लगाने के साथ–साथ वृक्षारोपण करते हुए वनों को विकसित करने और उनके संरक्षण पर ज्यादा से ज्यादा ध्यान केन्द्रित करने पर भी बल दिया है।

REFERENCES

1. साहित्यदर्पण 6.322
2. साहित्यदर्पण 6.323
3. 'हिमाचल वैभवम्' 1.3
4. 'हिमाचल वैभवम्' 1.5
5. 'हिमाचल वैभवम्' 1.6
6. 'हिमाचल वैभवम्' 1.9
7. 'हिमाचल वैभवम्' 1.10
8. 'हिमाचल वैभवम्' 1.11
9. 'हिमाचल वैभवम्' 1.12
10. 'हिमाचल वैभवम्' 1.13
11. 'हिमाचल वैभवम्' 1.15
12. 'हिमाचल वैभवम्' 1.17
13. 'हिमाचल वैभवम' 1.19
14. 'हिमाचल वैभवम्' 1.20
15. 'हिमाचल वैभवम्' 1.22
16. 'हिमाचल वैभवम्' 1.24
17. 'हिमाचल वैभवम्' 1.25
18. 'हिमाचल वैभवम्' 1.27
19. 'हिमाचल वैभवम्' 1.31

20. 'हिमाचल वैभवम्' 1.37

21. 'हिमाचल वैभवम्' 1.39

22. 'हिमाचल वैभवम्' 1.40

23. 'हिमाचल वैभवम्' 1.45

24. 'हिमाचल वैभवम्' 1.47

25. 'हिमाचल वैभवम्' 1.49

26. 'हिमाचल वैभवम्' 1.50

27. 'हिमाचल वैभवम्' 1.51

28. 'हिमाचल वैभवम्' 1.52

29. 'हिमाचल वैभवम्' 1.55

30. 'हिमाचल वैभवम्' 1.58

31. 'हिमाचल वैभवम्' 1.59

32. 'हिमाचल वैभवम्' 1.62

33. 'हिमाचल वैभवम्' 1.64

34. 'हिमाचल वैभवम्' 2.6

35. 'हिमाचल वैभवम्' 2.30

36. 'हिमाचल वैभवम्' 2.42

37. 'हिमाचल वैभवम्' 2.47

38. 'हिमाचल वैभवम्' 4.17

39. 'हिमाचल वैभवम्' 4.23

40. 'हिमाचल वैभवम्' 4.30

41. 'हिमाचल वैभवम्' 7.26

42. 'हिमाचल वैभवम्' 8.2

43. 'हिमाचल वैभवम्' 8.3

44. 'हिमाचल वैभवम्' 9.24

45. 'हिमाचल वैभवम्' 9.25

46. 'हिमाचल वैभवम्' 9.26

47. 'हिमाचल वैभवम्' 9.27

48. 'हिमाचल वैभवम्' 9.29

49. 'हिमाचल वैभवम्' 9.30